



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2019; 5(1): 388-390
 www.allresearchjournal.com
 Received: 09-11-2018
 Accepted: 12-12-2018

डॉ. जितेन्द्र प्रसाद
 सिंधियाघाट, विभूतिपुर, समस्तीपुर,
 बिहार, भारत

भारत में संघीय शासन प्रणाली के विभिन्न आयाम

डॉ. जितेन्द्र प्रसाद

सारांश:

संघवाद का अर्थ है राज्य की शक्ति का विभाजन ऐसी समन्वयी संस्थाओं में जिसकी शक्ति का स्रोत एक ही संविधान होता है, जो उनके कार्यों का नियंत्रण रखता है। ऐसे संघ राज्य में केन्द्रीय तथा राज्यों की सरकारों का सह-अस्तित्व और सहयोग रहता है, क्योंकि दोनों ही नागरिकों के संगठित जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करती है। संघात्मक संविधान वह है, जो राज्य की शक्ति को जो सार्वजनिक हित के लिए आवश्यक है, एक केन्द्रीय सरकार को देता है और उस शक्ति को जो प्रत्येक जिले प्रदेश अथवा देश के भाग के हित में आवश्यक है, उसे स्थानीय सरकार को देता है, जो उस भाग पर शासन करती है। संघात्मक और एकात्मक शासन में यही भेद है, संघात्मक संविधान एक राजनैतिक अनुबंध है, जो राज्य की शासन शक्तियों को दो सरकारों में बांटती है, केन्द्रीय सरकार जो सारे संघ पर शासन करती है और सदस्य राज्य व इकाई सरकार जो केवल स्थानीय क्षेत्र पर शासन करती है, किन्तु एकात्मक संविधान राज्य की सारी शक्ति एक ही सरकार को देता है, जो उस एकात्मक राज्य पर पूर्णतया शासन करती है। संघवाद के सिद्धान्तों के अनुसार स्थापित संघ में राज्य क्षेत्र दो समान अधिकारी संस्थाओं (केन्द्र व राज्य सरकार) में बंट जाता है, जिनमें प्रत्येक एक नवीन संविधान द्वारा नियमित होती है। "संघ राज्य वह है, जिसमें राज्य की शक्ति और अधिकार तो स्थानीय क्षेत्रों की सरकार के पास रहते हैं और अन्य शक्ति और अधिकार एक केन्द्रीय संस्था व सरकार के पास रहते हैं।"

प्रस्तावना

भारत में एकता अपने आप में एक संघीय अवधारणा है। यह एकता विविध सामाजिक-सांस्कृतिक इकाइयों के अन्तरावलम्बन से उत्पन्न हुई है। भारत में विविधता की स्वीकृति ही एकता की पुष्टि है। प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास से स्पष्ट होता है कि विविध सामाजिक-आर्थिक इकाइयों का अस्तित्व भारत में सदियों से विद्यमान है तथा अनेक प्रबुद्ध शासकों द्वारा इन इकाइयों को प्रांतों के रूप में मान्यता भी दी गयी थी। इस संदर्भ का उल्लेख किया है, जो क्षेत्रीय इकाइयों का निर्धारण करने वाली मान्यताओं को रेखांकित करते हैं। 'वायुपुराण' में विस्तारपूर्वक भारतवर्ष का भौगोलिक विवरण दिया गया है। इसमें 165 जनपदों का उल्लेख है, जो सात प्रमुख क्षेत्रों में संस्थापित है। अबुल फज़ल की 'आइन-ए-अकबरी' से उन आधारों की जानकारी होती है, जिन पर मुगल सूबे बनाये गये थे। प्रान्तों के सीमा-निर्धारण में भाषायी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक समरूपता का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। भारत एक बहुलवादी समाज एवं जटिल संघात्मक राज्य व्यवस्था है। चाहे सामाजिक व्यवस्थाएं हों या आर्थिक गठन, सांस्कृतिक प्रारूप, भाषायी समूह धार्मिक समुदाय या जातियां हों, नृजातीय पहचान हो या क्षेत्रीय विन्यास हो, भारत का बहुलवादी संघीय चरित्र इसके सामूहिक जीवन के व्यवहारतः प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टव्य है। भारत में आठ प्रमुख धार्मिक समुदाय हैं तथा 15 प्रमुख भाषायी समूह हैं। यहां पर लगभग 60 सामाजिक-सांस्कृतिक उपक्षेत्र हैं, जो देश के 7 प्राकृतिक-भौगोलिक क्षेत्रों में अपनी नृजातीय, भाषायी एवं धार्मिक समुदायों तथा भूमिबद्ध जातियों के समरूप विन्यास के साथ उपराष्ट्रीय पहचान बनाए हुए हैं। इस प्रकार भारत एक क्षेत्रीय प्रभुसत्ता में संघटित महाद्वीपीय संघात्मक राज्य व्यवस्था है।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान हमारी राज्यव्यवस्था की सुगठित सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रीय इकाइयों के प्रतिरूप को अस्त-व्यस्त कर दिया गया। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का गठन किसी तर्कसंगत सामाजिक-सांस्कृतिक अथवा आधार पर किये जाने के बजाय साम्राज्य-विस्तार की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रशासनिक सुविधा मात्र के अनुसार किया गया। ब्रिटिश शासन ने भारत में एक प्रामाणिक संघात्मक व्यवस्था के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध किया।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था उन तत्वों से सराबोर है, जिसमें हम यदि बारम्बार डुबकी लगायें तो हमें नये-नये आयामों से साक्षात्कार करना होगा। वास्तव में भारतीय संस्कृति सभी आयामों से अभिभूत है। जिसका प्रभाव प्राचीन समय में भी था आज भी है और कल भी रहेगा।

Corresponding Author:

डॉ. जितेन्द्र प्रसाद
 सिंधियाघाट, विभूतिपुर, समस्तीपुर,
 बिहार, भारत

बस जरूरत इतनी है कि हम परिवेश के बदलाव अनुरूप उसमें परिवर्तन के आकांक्षी हों। संघीय शासन पद्धति के अध्ययन से हमें ऐसे ही सभी तत्वों से साक्षात्कार होगा, जिसकी आज भी जरूरत है, बस कुछ परिवर्तनों के साथ।

यह सत्य है कि यदि कोई व्यक्ति या व्यवस्था अपने जड़ को भूलती है तो उसका विकास सही दिशा में एवं स्वस्थ नहीं हो सकता। जड़ ही किसी जीत के विकास को सही रूप से आधार प्रदान करता है और उसके प्रचार में सहायता प्रदान करता है। वास्तव में जड़ ही चेतन का आधार है। इसलिए किसी भी व्यवस्था के स्वस्थ एवं उद्योगात्मी प्रगति और विकसित होने में वहाँ की प्राचीन संस्कृति, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं भौतिक परिवेश का काफी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन भारतीय संघीय शासन पद्धति में हमें प्राचीन समय की राजनीतिक व्यवस्था तथा शासन व्यवस्था को रेखाचित्र में देखने को मिलता है। इसके अध्ययन से हमें यह भी पता चलता है कि ईसा के सदियों वर्ष पूर्व भी भारत में सुव्यवस्थित राजनीतिक व्यवस्था थी। यह सत्य है कि यह व्यवस्था आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के पूर्णतः अनुरूप तो नहीं थी, फिर भी वह कुछ न कुछ हद तक आज की व्यवस्था से मिलती जुलती तो अवश्य थी। यह भी सच है कि प्राचीन व्यवस्था का निर्माण तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ था। पर यहाँ प्रश्न यह उठता है कि तब उसे पुनः अध्ययन करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसका उत्तर ढूँढने में हमें काफी दूर नहीं जाना पड़ेगा, क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन में व्यवहारवाद के आगमन के बाद अध्ययन की पद्धति ही परिवर्तित हो गयी। व्यवहारवाद तथा उत्तर व्यवहारवाद ने राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन में केवल राजनीतिक मूल्यों के अध्ययन पर ही बल नहीं दिया है, बल्कि इस बात पर यह भी बल दिया है कि किस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य प्रभावशाली मूल्यों का प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः ये ही मूल्य राजनीतिक व्यवस्था के वातावरण पर अपना प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव छोड़ते हैं और साथ ही साथ उससे प्रभावित भी होते हैं और उन पर प्रभाव भी छोड़ते हैं। यह सत्य है कि सभी राष्ट्रों की राजनीतिक व्यवस्था वहाँ की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था से ही निर्देशित होती है। लोकतांत्रिक मूल्यों की स्वीकारोक्ति विश्वव्यापी है और सही मायने में यह राजनीतिक व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण से ही सम्भव है। जहाँ एक ओर राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की माँग प्रत्येक देश में बढ़ रही है, वहीं भारत में इसके प्रति जागरूकता एवं इसकी स्वीकारोक्ति काफी बढ़ गयी है।

अति प्राचीनकाल से ही भारत में ग्राम शासन स्थानीय स्वशासन व्यवस्था की धुरी रहे हैं। इसका महत्व उस युग में और भी अधिक था, क्योंकि उस समय यातायात के साधन मंदगामी थी और कारखाना या यन्त्रों का नाम भी न था। प्राचीन भारत के जीवन में नगरों का स्थान नगण्य था। वैदिक मन्त्रों में ग्रामों की समृद्धि की प्रार्थना तो की गयी है, परन्तु नगरों तथा पुरों का शायद ही नाम लिया गया हो। जातक कथाओं में भी किसी प्रदेश की समृद्धि के वर्णन के प्रसंग में समूह ग्रामों की संख्या को बड़े गर्व से रेखांकित किया गया है, पर नगरों या पुरों का नाम किंचित ही लिया गया है। वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में ग्रामों में जनसंख्या का अधिकतर भाग निवास करता था। उस समय राजा को किसी महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करना होता था तो ग्राम के मुखिया का सम्मेलन बुलाता था, ठीक उसी प्रकार आज के युग में जिलाधीशों का सम्मेलन राज्य सरकारें बुलाती हैं या फिर आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक एवं कम्प्यूटर का प्रयोग कर वीडियो कान्फ्रेंसिंग द्वारा उनसे संवाद स्थापित किया करती हैं। प्राचीन काल में इस प्रकार के कार्य के लिए बिम्बसार जैसे शासक ग्राम के मुखिया को बुलाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय

ग्राम ही राज्य के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन के केन्द्र थे। राष्ट्र की समृद्धि और शासन उन्हीं पर निर्भर थे।

ग्राम का शासन ग्राम के मुखिया के निरीक्षण एवं निर्देशन में चलता था। वेदों में ग्रामणी कहा गया है तथा जातक कथाओं में भी उसका उल्लेख मिलता है। साधारणतः ग्राम के लिए एक ही मुखिया रहता था।

मुखिया का सबसे प्रमुख कर्तव्य ग्राम की रक्षा करना था, वह ग्राम के स्वयं सेवक दल और पहरेदारों का नायक हुआ करता था। मुखिया का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य सरकारी करों को वसूलना था। उससे सम्बन्धित जरूरी लेख पत्र उसी के संरक्षण में रहते थे और ग्राम पंचायत के मदद से उसके आधार पर कर वसूली का काम किया करते थे वास्तव में वह ग्राम कार्यपालिका का प्रधान होता था तथा उसे पारिश्रमिक के रूप में कर-मुक्त जमीन मिलती थी, जिस पर वह अनाज उगा कर अपने पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करता था। ग्राम सभा के कार्य उप समितियों द्वारा सम्पादित होते थे। जिसके सदस्य प्रायः अवैतनिक कार्य करने पर बीच में भी हटाये जा सकते थे। ऐसी व्यवस्था बनायी गयी थी, जिसमें ग्राम के सभी योग्य व्यक्ति ग्राम प्रशासन में जुट सकें। जिसके लिए ऐसे नियम का प्रावधान किया गया था कि जो व्यक्ति एक बार किसी उपसमिति का सदस्य रह चुका होता था, वह पुनः तीन वर्ष तक उप समिति का सदस्य नहीं हो सकता था। उप समितियों की संख्या और कार्य क्षेत्र प्रत्येक ग्राम की आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न रहती थी, एक लेख में भूमि-माप समिति का पता चलता है। इसका काम भूमि की नाप-जोख और वर्गीकरण करना और यह देखना था कि सरकारी नाप या भूमि-कर भी उचित और न्याय संगत हो। एक अन्य लेख में देवालय समिति का भी उल्लेख मिलता है। वहाँ विद्यालय भी थे, सम्भवतः इसमें एक शिक्षा समिति भी रहती हो, परन्तु कार्य समिति और उसकी उपसमितियों की कार्य प्रणाली के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त हुई है।

उत्तर और दक्षिण भारत में ऐसे बहुत से लेख मिले हैं, जिसमें राजा द्वारा ग्राम के मुखिया और पंचायत को दिये गये आदेशों का विवरण मिलता है, जो इस बात की ओर इशारा करता है कि केन्द्रीय सरकार को ग्राम की व्यवस्था के साधारण नियंत्रण और निरीक्षण का अधिकार रहता था। केन्द्रीय सरकार अपने अधिकार के प्रयोग के आलोक में कभी-कभी जिले के प्रधान को पृच्छाछ के लिए तथा ग्राम सम्बन्धी जानकारी के लिए ग्राम के मुखिया को अपने दफ्तर में बुला लेती थी या कभी-कभी केन्द्रीय सरकार ग्राम पंचायत के साधारण प्रबन्ध और हिसाब-किताब के जांच के लिए निरीक्षक को भेजती थी। ग्राम प्रशासनिक कार्य में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी करने पर ग्राम पंचायत के सदस्यों को सभी स्वयं पदच्युत कर देती थी, पर कभी-कभी केन्द्रीय सरकार भी उन पर जुर्माना किया करती थी। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार आज भारत में 73वें संविधान अधिनियम के तहत ग्राम प्रमुख के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाकर पदच्युत कर देती है। यदि दो ग्राम पंचायतों में विवाद होने पर साधारणतः यह मामला केन्द्र सरकार के सामने पेश किया जाता था। साथ ही एक ऐसा भी उदाहरण मिलता है, जिसमें ग्रामों के विवाद होने पर तीसरे ग्राम की पंचायत निर्णायक बनायी गयी है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार का कार्य केवल निरीक्षण नियंत्रण था, परन्तु वास्तविक रूप से राज्य सरकार के सभी कार्य तथा सुरक्षा कर संग्रहण इत्यादि ग्राम प्रशासन ही करती थी। यहाँ तक कि ग्राम पंचायतें अपने ग्राम प्रशासन को चलाने के लिए कर भी निर्धारित करती थी एवं उसका संग्रहण भी करती थी। ग्राम प्रशासन न्यायिक मामलों की भी निगरानी करती थी। इसके कार्यों में सार्वजनिक श्रम सम्बन्धित कार्य तथा अन्य प्राकृतिक दुर्घटनाओं, यथा- अकाल आदि का भी निवारण करती थी। ग्राम प्रशासन कुछ लोक कल्याणकारी कार्यों को भी सम्पादित करती, जिसमें प्रमुख हैं-

पाठशालाओं का निर्माण, संचालन, अनाथालयों, देवालियों आदि सम्बन्धित कार्य, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आधुनिक काल में भारत में जितने कार्य ग्राम पंचायतों को सौंपे गये हैं, उनमें कहीं ज्यादा कार्य उस समय ग्राम पंचायत को सौंपे गये थे। वास्तव में ग्राम प्रशासन ग्रामवासियों के अभ्युदय और उनका सर्वांगीण विकास तथा नैतिक एवं धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने में सहायता एवं निर्देश प्रदान करती थी।

प्राचीन भारतीय संघीय व्यवस्था में गैर सरकारी न्यायालयों को विशेष प्रोत्साहन मिला था। जिसके पीछे कई कारण थे। प्रथम कारण था, स्थानीय लोगों का न्याय प्रशासन में भागीदारी, द्वितीय विशिष्ट न्यायालय द्वारा विशिष्ट कार्यों से जुड़े व्यक्ति को सही न्याय प्रदान करना, जैसा कि आजकल न्यायाधिकरणों से किया जाता है, जैसे टेलिकॉम रेगुलेटरी अर्थांरिटी इत्यादि। दीवानी मामलों में तो कुछ फौजदारी मामलों का निपटारा भी ग्राम पंचायतों ही करती थी।

न्याय निर्णय के बारे में कुछ मूलभूत सिद्धान्त स्वीकार किये गये हैं। मामलों का विचार एकान्त में न होकर अपितु सार्वजनिक स्थानों में व सभी लोगों के समक्ष होता था। मामले जैसे दाखिल किये जाते थे, वैसे ही उनकी सुनवाई होती थी, परन्तु महत्वपूर्ण विवाद पहले भी निपटाये जाते थे। न्याय निर्णय करना तुरन्त आवश्यक था तथा सरकारी अधिकारियों को न्यायाधिकारियों की कार्यों में हस्तक्षेप करना अनुचित माना जाता था। न्यायाधिकारियों को निष्पक्ष रहना अत्यावश्यक था, जब कोई मामला विचाराधीन रहा था, तब वे वादी प्रतिवादियों के साथ संभाषण, भोजन इत्यादि नहीं कर सकते थे। यदि कोई न्यायाधिकारी अनुचित आचरण या पक्षपात करता था, तो उसे दण्ड दिया जाता था। अपराधी यदि सिद्ध करे कि वह नाबालिग है या आत्मसंरक्षण के लिए बल प्रयोग किया था या किसी दूसरे व्यक्ति के दबाव से उसको अपराध करना पड़ा तो उसे दण्ड नहीं दिया जाता था।

निष्कर्ष :

संघीय शासन प्रणाली की सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि उसकी इकाइयों की भिन्नताओं और स्वायत्ताओं के बावजूद इकाइयों को संघ के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करनी चाहिये। इन संघों में नागरिक अपनी दोहरी राष्ट्रियता का अनुभव करते हैं। इकाइयों में जितनी समानता होगी उतना ही संघ सफल होगा। इकाइयों में क्षेत्रीय दृष्टि से इतना अन्तर न हो कि एक इकाई दूसरे पर आधिपत्य स्थापित कर ले। इसलिए संघ की इकाइयों का धन क्षेत्र और जनसंख्या की वृद्धि की दृष्टि से आकार भी संघवाद की सफलता के लिए महत्वपूर्ण कारक है। संघ में इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि इकाइयां अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रख सकें। संघ में इकाइयों के क्षेत्र का निर्धारण करते समय यह देखा जाना चाहिये कि एक इकाई दूसरी इकाई की तुलना में बहुत बड़ी न हो। संघ की सफलता न केवल आर्थिक साधनों की प्रचुरता पर ही निर्भर करती है किन्तु इन आर्थिक साधनों का संघ और इकाइयों के बीच किस प्रकार से वितरण किया जाये। वित्तीय साधनों के उचित व संतुलित वितरण पर भी संघ की सफलता निर्भर करती है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय संघीय व्यवस्था शासन को न केवल जनता के करीब लाती है, बल्कि शासन के सभी विधान, जैसे—न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के साथ जनता को जोड़ती भी है।

सन्दर्भ :

1. फ्रीमैन : हिस्ट्री ऑफ फेडरल गवर्नमेन्ट वाल्यूम-1, 1959, पृ. 157.
2. सी०एच० एलेक्जेन्ड्रोविक्च : कॉस्टिट्यूशनल डेवलपमेंट्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड, यूनि० प्रेस, लन्दन, 1957, पृ. 101

3. रविन्द्रनाथ मित्रा : संघवाद, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशन आगरा, 1996, पृ. 11.
4. विपिन चन्द्रा एवं मुखर्जी : आजादी के बाद का भारत (1947-2007), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, चतुर्थ संस्करण, 1983, पृ. 23.
5. ए०पी० न्यूटन : फेडरल एण्ड यूनिफाइड कान्स्टीटूशन, 1923, पृ. 43.